



ISSN: 3049-2017

IJMH 2026; 3(5): 120-123

© 2026 IJMH

www.themultijournal.com

Received: 22-09-2026

Accepted: 14-10-2026

Publish : 15-10-2026

डॉ. पुष्पेन्द्र जोशी

शोधकर्ता

सहायक आचार्य, वेदविभाग,

महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक-

विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश

संस्कृत में अग्नि-तत्त्व-विमर्श

डॉ. पुष्पेन्द्र जोशी

भारतीय संस्कृति में अग्नि केवल एक भौतिक पदार्थ अथवा दहन की प्रक्रिया नहीं है। अग्नि भारतीय परम्परा में जीवन, प्रकाश, ऊर्जा, यज्ञ, पाचन, परिवर्तन, ज्ञान और चेतना की प्रतीकात्मक तथा तात्त्विक सत्ता है। वैदिक वाङ्मय में अग्नि को सर्वप्रथम देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र ही अग्नि की स्तुति से प्रारम्भ होता है। यास्काचार्य ने निरुक्त में अग्नि को 'अग्रणी' कहा है। उपनिषदों में अग्नि/तेजस् सृष्टि-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण तत्त्व है। सांख्य और वैशेषिक दर्शन में तेजस् का तात्त्विक विश्लेषण मिलता है। भगवद्गीता में अग्नि को भगवान् की प्रकृति का एक तत्त्व तथा वैश्वानर रूप में प्राणियों के शरीर में स्थित पाचक शक्ति बताया गया है। आयुर्वेद में जठराग्नि, भूताग्नि तथा धात्वाग्नि की अवधारणा शरीर में होने वाली रूपान्तरण-प्रक्रिया को समझने का आधार प्रदान करती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य अग्नि को केवल धार्मिक प्रतीक के रूप में देखने के स्थान पर उसके वैदिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा आयुर्वेदिक स्वरूप का समन्वित अध्ययन करना है। साथ ही यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन भारतीय 'अग्नि' और आधुनिक विज्ञान की 'ऊर्जा' को पूर्णतः समान मानना उचित नहीं है, यद्यपि प्रकाश, ताप और रूपान्तरण जैसे कुछ स्तरों पर दोनों के मध्य सार्थक तुलनात्मक विमर्श किया जा सकता है।

बीजशब्द - अग्नि, तेजस्, अग्नितत्त्व, पंचमहाभूत, यज्ञ, वैश्वानर, जठराग्नि, वैदिक विज्ञान।

१. प्रस्तावना

संस्कृत केवल एक प्राचीन भाषा नहीं है; वह भारतीय ज्ञानपरम्परा की संवाहिका है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, व्याकरण और अनेक ज्ञान-विज्ञान शाखाओं का विशाल साहित्य संस्कृत में सुरक्षित है। अतः जब हम 'संस्कृत में विज्ञान' की चर्चा करते हैं, तब हमारा उद्देश्य केवल आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों को संस्कृत ग्रन्थों में खोज लेना नहीं होना चाहिए, बल्कि यह देखना चाहिए कि भारतीय मनीषियों ने प्रकृति और जीवन को किस प्रकार समझा था।

इसी दृष्टि से 'संस्कृत में अग्नि-तत्त्व-विमर्श' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। अग्नि भारतीय जीवन से इतनी गहराई से जुड़ी हुई है कि मनुष्य के दैनिक जीवन से लेकर यज्ञ, संस्कार, चिकित्सा और आध्यात्मिक साधना तक उसका विस्तार दिखाई देता है। वैदिक ऋषि अग्नि को केवल देखते नहीं थे, वे अग्नि में जीवन की एक विराट शक्ति का अनुभव करते थे। इसीलिए ऋग्वेद के आरम्भ में ही उद्घोष होता है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ ऋग्वेद १.१.१

अर्थात्- मैं उस अग्नि की स्तुति करता हूँ जो यज्ञ का पुरोहित, ऋत्विज् और होता है तथा श्रेष्ठ सम्पदा प्रदान करने वाली है। यह संयोग नहीं है कि भारतीय वाङ्मय का प्रथम मन्त्र अग्निकी स्तुति से आरम्भ होता है। यह इस बात का संकेत है कि भारतीय जीवन-दर्शन में प्रकाश और परिवर्तन को अत्यन्त मूलभूत महत्व प्राप्त था।

२. 'अग्नि' शब्द का निर्वचन

अग्नि-तत्त्व को समझने के लिए उसके नाम का निरुक्तपरक विवेचन अत्यन्त उपयोगी है। महर्षि यास्क निरुक्त के सप्तम अध्याय में कहते हैं—

अग्निः पृथिवीस्थानः। तं प्रथमं व्याख्यास्यामः।

अग्निः कस्मात्? अग्रणीर्भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते।

अङ्गं नयति सन्नममानः॥

निरुक्त ७.१४

Correspondence:**डॉ. पुष्पेन्द्र जोशी**

शोधकर्ता

सहायक आचार्य, वेदविभाग,

महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक-

विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्यप्रदेश

यास्काचार्य अग्नि के 'अग्रणी' होने तथा यज्ञ में उसे आगे ले जाने की व्याख्या करते हैं। यहाँ 'अग्रणी' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। अग्नि स्वयं आगे बढ़ती हुई प्रतीत होती है और जिस पदार्थ को ग्रहण करती है, उसके स्वरूप में परिवर्तन कर देती है। लकड़ी को अग्नि स्पर्श करती है तो वह पहले गर्म होती है, फिर जलती है और अन्ततः राख आदि में परिणत होती है। अतः अग्नि के स्वरूप में दो प्रमुख तत्त्व दिखाई देते हैं- प्रकाश और रूपान्तरण। यही दोनों तत्त्व आगे चलकर भारतीय दर्शन में अग्नि और तेजस् की अवधारणा को विशेष अर्थ प्रदान करते हैं।

३. वैदिक वाङ्मय में अग्नि

ऋग्वेद में अग्नि का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। वह पुरोहित है, होता है, ऋत्विज है, देवताओं का दूत है और यज्ञ का आधार है।

ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का द्वितीय मन्त्र कहता है -

अग्निः पूर्वैर्भृषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति॥

ऋग्वेद १.१.२

अर्थात् अग्नि प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत्य थी और नवीन साधकों द्वारा भी स्तुत्य है; वह देवताओं को यहाँ लाती है। यहाँ अग्नि केवल भौतिक लौ नहीं है। वह मानव और देवत्व के मध्य सेतु है। ऋग्वेद में अग्नि के अनेक नाम मिलते हैं-जातवेदस्, वैश्वानर, हव्यवाहन, दूत, होता आदि। प्रत्येक नाम अग्नि के किसी विशेष गुण की ओर संकेत करता है। यदि यज्ञ में आहुति मनुष्य की ओर से देवता की ओर जाने वाली अभिव्यक्ति है, तो अग्नि उस अभिव्यक्ति की वाहिका है। इस दृष्टि से अग्नि भारतीय यज्ञदर्शन में संवाद और समर्पण का माध्यम बन जाती है।

४. अग्नि और यज्ञ

वैदिक जीवन में यज्ञ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है और यज्ञ का प्राण अग्नि है। यज्ञ में मनुष्य अपने पास उपलब्ध वस्तु को अग्नि में समर्पित करता है। यह केवल वस्तु का दहन नहीं है। इसके पीछे एक गहरी सांस्कृतिक भावना है- 'मेरे पास जो है, वह केवल मेरा नहीं; मैं उसे व्यापक कल्याण के लिए समर्पित करता हूँ।' इस अर्थ में अग्नि त्याग और समर्पण की साक्षी है। अग्नि में डाली गई आहुति अपना पूर्वरूप छोड़ देती है। यही अग्नि का रूपान्तरणकारी स्वरूप है। इसलिए अग्नि को यज्ञ का माध्यम मानने के पीछे वैज्ञानिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक—तीनों प्रकार के अर्थ देखे जा सकते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि को देवताओं के मुख से सम्बद्ध किया गया है—

अग्निर्वै देवानां मुखम्।

इस वैदिक वाक्य का आशय यह है कि देवताओं के लिए दी जाने वाली हवि अग्नि के माध्यम से ग्रहण की जाती है। वैदिक ब्राह्मण-परम्परा में इस प्रकार के अग्नि-विवेचन के प्रमाण उपलब्ध हैं।

५. उपनिषदों में अग्नि-तत्त्व

वेदों के कर्मप्रधान स्वरूप से उपनिषदों में प्रवेश करते हुए अग्नि का अर्थ और भी सूक्ष्म होता जाता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में सृष्टि का क्रम इस प्रकार दिया गया है—

आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्रेरापः अद्भ्यः पृथिवी।

तैत्तिरीयोपनिषद्, २.१

अर्थात् आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति कही गई है। यहाँ अग्नि सृष्टि के विकासक्रम में एक मध्यवर्ती तत्त्व है। दूसरी ओर छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है -

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत।

तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत॥

छान्दोग्योपनिषद् ६.२.३

यहाँ 'तेजस्' की उत्पत्ति और उससे जल की उत्पत्ति का प्रतिपादन मिलता है। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है-उपनिषद् की भाषा में अग्नि और तेजस् के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है, पर दोनों शब्दों को प्रत्येक प्रसंग में यांत्रिक रूप से समानार्थक मानना उचित नहीं है। 'अग्नि' का सम्बन्ध देवता, यज्ञ और दाहक शक्ति से है, जबकि 'तेजस्' प्रकाश, उष्णता और तात्त्विक सत्ता का व्यापक संकेत करता है।

६. अग्नि और पंचमहाभूत

भारतीय दर्शन में पंचमहाभूत-पृथ्वी, आप, तेजस्, वायु और आकाश-सृष्टि-विचार के प्रमुख तत्त्व हैं। अग्नि अथवा तेजस् इन पंचमहाभूतों में विशेष स्थान रखता है क्योंकि यह रूप और प्रकाश से सम्बद्ध है। आधुनिक मनुष्य के लिए यह समझना सहज है कि किसी वस्तु को देखने के लिए प्रकाश आवश्यक है। भारतीय मनीषियों ने भी दृश्य-जगत् और तेजस् के सम्बन्ध को अत्यन्त महत्व दिया। अग्नि का एक पक्ष ताप है और दूसरा पक्ष प्रकाश।

इसीलिए अग्नि के बिना जीवन की अनेक प्रक्रियाएँ सम्भव नहीं होतीं। सूर्य, विद्युत्, अग्नि, पाचन और शरीरगत ऊष्मा—इन सभी में भारतीय चिन्तन ने किसी न किसी स्तर पर तेजस् का अनुभव किया।

७. भगवद्गीता में अग्नि

भगवद्गीता में अग्नि को भगवान् की प्रकृति का एक महत्वपूर्ण तत्त्व माना गया है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

भगवद्गीता ७.४

यहाँ 'अनल' अर्थात् अग्नि भगवान् की अष्टधा अपरा प्रकृति के अन्तर्गत आती है। किन्तु गीता में अग्नि का सबसे मार्मिक रूप पन्द्रहवें अध्याय में मिलता है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

भगवद्गीता १५.१४

अर्थात्-मैं वैश्वानर अग्नि बनकर प्राणियों के शरीर में स्थित हूँ और प्राण-अपान से संयुक्त होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

यह श्लोक अग्नि के बाह्य से आन्तरिक रूप की यात्रा कराता है। जो अग्नि बाहर लकड़ी को परिवर्तित करती है, वही भीतर अन्न को शरीर के लिए उपयोगी बनाती है। इस प्रकार बाह्य अग्नि और आन्तरिक अग्नि में 'रूपान्तरण' का एक सामान्य सूत्र दिखाई देता है।

८. वैश्वानर अग्नि और मानव शरीर

गीता का 'वैश्वानर' केवल रूपक नहीं है। भारतीय चिकित्सा परम्परा में शरीरगत अग्नि का अत्यन्त विस्तृत विवेचन हुआ है। अन्न हमारे शरीर में प्रवेश करने के बाद उसी रूप में नहीं रहता। उसका पाचन, अवशोषण और शरीर के विभिन्न घटकों में रूपान्तरण होता है। आयुर्वेद ने इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को 'अग्नि' की संकल्पना के माध्यम से समझने का प्रयास किया।

आयुर्वेद में मुख्यतः-

जठराग्नि, भूताग्नि, धात्वाग्नि

का विवेचन मिलता है। यहाँ अग्नि का अर्थ केवल पेट में जलने वाली लौ नहीं है, बल्कि शरीर में पदार्थ को परिवर्तित और उपयोगी बनाने वाली जैविक शक्ति है। इस दृष्टि से 'अग्नि' भारतीय चिकित्सा-दर्शन में जीवन की गतिशीलता का आधार बनती है।

९. अग्नि : रूपान्तरण का तत्त्व

मेरे विचार से अग्नि-तत्त्व के अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यही है कि अग्नि का मूल स्वभाव 'परिवर्तन' है। लकड़ी अग्नि से राख में बदलती है। कच्चा अन्न अग्नि से पककर भोजन बनता है। यज्ञ की सामग्री अग्नि के माध्यम से सूक्ष्मीकृत होती है। शरीर में अन्न वैश्वानर अग्नि द्वारा धातुपोषण की प्रक्रिया में प्रवेश करता है। और आध्यात्मिक स्तर पर अज्ञान ज्ञान से परिवर्तित होता है। इसीलिए भारतीय परम्परा में ज्ञान को भी अग्नि के रूप में देखा गया।

भगवद्गीता में कहा गया है-

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

भगवद्गीता ४.३७

जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञान की अग्नि कर्मों को भस्म कर देती है। यहाँ अग्नि का सबसे सूक्ष्म रूप सामने आता है-ज्ञानाग्नि। अर्थात् बाहरी अग्नि पदार्थ को बदलती है, जबकि ज्ञान की अग्नि मनुष्य के भीतर की दृष्टि को बदल देती है।

१०. अग्नि और ज्ञान का सम्बन्ध

भारतीय चिन्तन में प्रकाश और ज्ञान का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है। अन्धकार में वस्तु दिखाई नहीं देती। प्रकाश आते ही उसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। ठीक इसी प्रकार अज्ञान के कारण सत्य का स्वरूप छिपा रहता है और ज्ञान के प्रकाश से सत्य का बोध होता है। इसलिए अग्नि का आध्यात्मिक अर्थ केवल 'तप' नहीं है; वह अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाली शक्ति भी है। मनुष्य के भीतर जब विवेक जागता है, तब वह अपने जीवन के प्रति नयी दृष्टि प्राप्त करता है। इस परिवर्तन को भारतीय परम्परा 'ज्ञान' कहती है और उसका प्रतीक अग्नि बनती है।

११. न्याय-वैशेषिक दर्शन में तेजस्

न्याय-वैशेषिक परम्परा का महत्व इस बात में है कि उसने प्रकृति के पदार्थों का विश्लेषण अत्यन्त व्यवस्थित ढंग से किया। इस दर्शन में पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु और आकाश को द्रव्यरूप से स्वीकार किया गया है। तेजस् को उष्णता और प्रकाश से सम्बन्धित द्रव्य के रूप में विवेचित किया गया। वैशेषिक परम्परा में तेजस् के गुणों का विश्लेषण मिलता है। संस्कृत के दार्शनिक साहित्य में तेजस् के रूप और स्पर्श आदि गुणों का विवेचन उपलब्ध है। यहाँ भारतीय दर्शन का वैज्ञानिक-विश्लेषणात्मक पक्ष दिखाई देता है। फिर भी यह कहना उचित नहीं होगा कि वैशेषिक का 'तेजस्' आधुनिक भौतिक विज्ञान की 'ऊर्जा' के बिल्कुल समान है। दोनों अलग ज्ञान-परम्पराओं की संकल्पनाएँ हैं। हाँ, ताप, प्रकाश और पदार्थगत परिवर्तन के स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन अवश्य सम्भव है।

१२. अग्नि और आधुनिक विज्ञान : एक सावधान तुलनात्मक दृष्टि

आज के विज्ञान में अग्नि को मुख्यतः दहन की प्रक्रिया से उत्पन्न ऊष्मा और प्रकाश के रूप में समझा जाता है। दहन में पदार्थों के रासायनिक परिवर्तन होते हैं और ऊर्जा का रूपान्तरण होता है। भारतीय अग्नि-तत्त्व इससे अधिक व्यापक है।

भारतीय ग्रन्थों में अग्नि—

देवता भी है, तत्त्व भी है, ऊष्मा भी है, प्रकाश भी है, पाचनशक्ति भी है, यज्ञ का माध्यम भी है और ज्ञान का प्रतीक भी है।

इसलिए भारतीय अग्नि को आधुनिक 'फायर' अथवा 'एनर्जी' का केवल पर्याय कहना उचित नहीं। इसके स्थान पर यह कहना अधिक वैज्ञानिक होगा कि दोनों अवधारणाओं में ऊष्मा, प्रकाश और रूपान्तरण जैसे कुछ समान अनुभव-क्षेत्र हैं, किन्तु उनके दार्शनिक संदर्भ भिन्न हैं। यही जानकारी किसी भी 'प्राचीन विज्ञान' विषयक शोध को अधिक विश्वसनीय बनाती है।

१३. अग्नि और मानवीय संवेदना

अग्नि के प्रति भारतीय मनुष्य का सम्बन्ध केवल बौद्धिक नहीं रहा। उसमें भावनात्मकता भी रही है। जब गृहस्थ अपने घर में अग्नि प्रज्वलित करता है, तब वह केवल ताप प्राप्त नहीं करता; वह गृहस्थ जीवन की निरन्तरता का अनुभव करता है। जब विवाह में अग्नि के सम्मुख सप्तपदी होती है, तब अग्नि केवल आग नहीं रहती—वह प्रतिज्ञा की साक्षी बन जाती है।

जब यज्ञ में आहुति दी जाती है, तब अग्नि त्याग की साक्षी बनती है। जब अन्त्येष्टि में अग्नि देह को पंचतत्त्व में लौटा देती है, तब अग्नि जीवन की अनित्यता का बोध कराती है। और जब साधक दीपक की लौ के सामने बैठता है, तब वही अग्नि उसके भीतर के अन्धकार को देखने का माध्यम बनती है। यही भारतीय अग्नि-दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है—अग्नि बाहर भी है और भीतर भी।

१४. रामायण और महाभारत में अग्नि-तत्त्व

रामायण और महाभारत में अग्नि-तत्त्व केवल अग्निदेव के रूप में ही नहीं, बल्कि पवित्रता, साक्षित्व, यज्ञ, देवताओं तक हवि पहुँचाने वाले माध्यम, तेज और आत्मिक शुद्धि के रूप में भी प्रतिपादित हुआ है।

१. वाल्मीकि रामायण में अग्नि-तत्त्व

(क) अग्नि-साक्षी और सीता की पवित्रता

वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में सीता की अग्निपरीक्षा के प्रसंग में अग्निदेव स्वयं सीता की निष्कलंकता प्रमाणित करते हैं। रामायण के बालकाण्ड में भी इस प्रसंग का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है—

ततः अग्निवचनात् सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम्।

कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

अर्थात् अग्निदेव के वचन से सीता की निष्कलंकता ज्ञात हुई और उस महान् घटना से समस्त चराचर जगत् प्रभावित हुआ।

यहाँ अग्नि 'शुद्धि एवं सत्य के साक्षी' के रूप में प्रतिष्ठित है।

(ख) आश्रम-जीवन में अग्नि की उपासना

अरण्यकाण्ड में अगस्त्य ऋषि के आश्रम का वर्णन करते हुए कहा गया है—

अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथिं प्रतिपूज्य च।

वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ॥

वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड 3.12.27

अर्थात् ऋषि ने अग्नि में होम करके, अर्घ्य प्रदान करके तथा अतिथि का सत्कार करके वानप्रस्थ-धर्म के अनुसार उन्हें भोजन कराया। इससे स्पष्ट है कि रामायणकालीन आश्रम-व्यवस्था में अग्नि दैनिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन का अभिन्न अंग थी। (ग) अग्नि का आश्रम में पवित्र स्थान

अरण्यकाण्ड में अगस्त्य के शिष्य के विषय में आता है—

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः।

तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम्॥

वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड 3.12.5

यहाँ “अग्निशरणम्” अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद है। इससे ज्ञात होता है कि आश्रम में अग्नि का एक विशिष्ट पवित्र स्थान था।

२. महाभारत में अग्नि-तत्त्व

महाभारत में अग्नि का स्वरूप और भी व्यापक रूप में मिलता है।

(क) अग्नि—समस्त प्राणियों के अन्तःस्थित साक्षी

आदिपर्व में अग्नि के विषय में कहा गया है—

अग्ने! त्वं सर्वभूतानामन्तरेषु सदा स्थितः।

सर्वज्ञ! पुण्यपापेषु साक्षिवत् त्वं व्यवस्थितः॥

अर्थात्—हे अग्ने! आप समस्त प्राणियों के भीतर सदैव स्थित रहते हैं। हे सर्वज्ञ! आप पुण्य और पाप के विषय में साक्षी के समान स्थित रहते हैं।

(ख) अग्नि—देवताओं का मुख और हव्यवाहन

महाभारत, सभापर्व में सहदेव द्वारा अग्नि की स्तुति की गई है—

पावक! त्वं हि देवानां मुखं यज्ञस्वरूपवान्।

पावकः सर्वभूतानां हव्यवाहन उच्यसे॥

इसी प्रसंग में अग्नि के लिए पावक, यज्ञस्वरूप, हव्यवाहन और जातवेदा जैसे नाम प्रयुक्त हुए हैं।

यहाँ अग्नि के तीन प्रमुख तत्त्व सामने आते हैं—

यज्ञस्वरूपता, हव्यवाहकता, पावनता

३. महाभारत में अग्नि का विश्वात्मक स्वरूप

वनपर्व में अग्नि की उत्पत्ति और उसके विभिन्न रूपों का विस्तृत विवेचन मिलता है। वहाँ अग्नि को समस्त प्राणियों का आत्मा तथा जगत् का रक्षक कहा गया है। विशेष रूप से महाभारत में कहा गया है कि विभिन्न अग्नियों में मूलतः एक ही अग्नितत्त्व विद्यमान है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में अग्नि मुख्यतः पवित्रता, सत्य, यज्ञ और धार्मिक अनुशासन की प्रतीक है, जबकि महाभारत में अग्नि का स्वरूप अधिक व्यापक होकर अन्तर्यामी साक्षी, यज्ञस्वरूप, हव्यवाहक, पावक, तेज तथा विश्वात्मक तत्त्व तक विस्तृत हो जाता है। अतः संस्कृत साहित्य में अग्नि केवल पंचमहाभूतों में से एक भौतिक तत्त्व नहीं, बल्कि धर्म, सत्य, चेतना और आध्यात्मिक रूपान्तरण का दार्शनिक प्रतीक भी है।

१५. अग्नि के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक आयाम

अग्नि को तीन प्रमुख स्तरों पर समझा जा सकता है—

(क) आधिभौतिक अग्नि

जो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देती है—ताप और प्रकाश देने वाली अग्नि।

(ख) आधिदैविक अग्नि

जो वैदिक देवता के रूप में यज्ञ और देव-मानव सम्बन्ध की अधिष्ठात्री है।

(ग) आध्यात्मिक अग्नि

जो ज्ञान, तप, साधना और आत्मशुद्धि की प्रतीक है।

इन तीनों को जोड़ने वाला सूत्र है—

अग्निः परिवर्तनस्य शक्तिः।

अर्थात् अग्नि परिवर्तन की शक्ति है।

१६. अग्नि और पर्यावरणीय दृष्टि

भारतीय पंचमहाभूत सिद्धान्त में कोई भी तत्त्व अकेला नहीं है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी परस्पर सम्बद्ध हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् का क्रम—

आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।

एक समन्वित विश्वदृष्टि प्रस्तुत करता है।

आज जब ऊर्जा-संकट और पर्यावरण-सन्तुलन मानवता के सामने बड़ी चुनौतियाँ हैं, तब अग्नि-तत्त्व का यह पारम्परिक विवेचन एक सांस्कृतिक संदेश भी देता है—ऊर्जा का उपयोग संयमपूर्वक और उत्तरदायित्व के साथ होना चाहिए।

अग्नि जीवनदायिनी है, किन्तु उसका अतिरेक विनाशकारी भी हो सकता है। इसलिए भारतीय दृष्टि में अग्नि का सम्मान उसके संतुलित उपयोग से जुड़ा है।

१७. उपसंहार

अग्नि को समझना केवल एक प्राकृतिक तत्त्व को समझना नहीं है; यह भारतीय जीवन-दर्शन के एक अत्यन्त गहरे प्रतीक को समझना है। ऋग्वेद में जिस अग्नि से वेदवाणी का आरम्भ होता है, वही अग्नि यज्ञ में समर्पण की साक्षी बनती है। यास्काचार्य के लिए वह अग्रणी है। उपनिषदों में वह सृष्टि-क्रम का तत्त्व है। सांख्य और वैशेषिक में वह तेजस् के रूप में दार्शनिक विश्लेषण का विषय बनती है। भगवद्गीता में वह भगवान् की प्रकृति का अंग है और वैश्वानर बनकर प्रत्येक प्राणी के शरीर में स्थित है। आयुर्वेद में वही अग्नि जीवन और स्वास्थ्य के पोषण की आधारभूत शक्ति है।

इस सम्पूर्ण परम्परा को देखने पर एक अत्यन्त सुन्दर सूत्र हमारे सामने आता है—

अग्नि बाहर की लौ से भीतर की चेतना तक की यात्रा है।

बाहर वह अन्धकार को दूर करती है;

यज्ञ में वह समर्पण को स्वीकार करती है;

शरीर में वह अन्न को जीवन में बदलती है;

बुद्धि में वह विवेक को प्रकाशित करती है;

और आत्मचिन्तन में वह अज्ञान को ज्ञान में परिवर्तित करती है।

इसीलिए भारतीय मनीषियों ने अग्नि को केवल देखा नहीं—उसमें जीवन का रहस्य अनुभव किया।

अन्ततः कहा जा सकता है—

अग्निर्न केवलं वह्निः, न केवलं दाहशक्तिः।

अग्निः प्रकाशः, अग्निः परिवर्तनम्, अग्निः जीवनम्,

अग्निः यज्ञः, अग्निः ज्ञानम्।

अर्थात् अग्नि केवल लौ नहीं है; वह प्रकाश है, परिवर्तन है, जीवन है, यज्ञ है और ज्ञान भी है। यही भारतीय अग्नि-तत्त्व-विमर्श की वास्तविक व्यापकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ एवं प्रमाण -

1. ऋग्वेदसंहिता, मण्डल १,
2. यास्काचार्य — निरुक्त, सप्तम अध्याय, ७.१४
3. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली, २.१
4. छान्दोग्योपनिषद्, षष्ठ अध्याय, द्वितीय खण्ड,
5. भगवद्गीता,
6. ऐतरेयब्राह्मण,
7. वैशेषिकदर्शन —
8. चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता,
9. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण —
10. महाभारत
11. वाल्मीकि रामायण